नईदुनिया

संपादकीय

ब्लैक स्पॉट पर मौत का इंतजार कब तक?

सुप्रीम कोर्ट *की सड़क सुरक्षा समिति के निर्देशों और निगरानी के बावजूद यदि शहर की सड़कें सुरक्षित नहीं हो पा रही हैं, तो यह पूरे प्रशासनिक तंत्र की सबसे बड़ी विफलता है। भोपाल में पिछले वर्ष तत्कालीन अध्यक्ष और पूर्व न्यायाधीश अभय मनोहर सप्रे के नेतृत्व में गठित समिति ने शहर के आठ प्रमुख ब्लैक स्पॉट का निरीक्षण कर छह माह के भीतर सड़क इंजीनियरिंग और सुरक्षा सुधार के स्पष्ट निर्देश दिए थे। एक वर्ष बीत जाने के बाद भी धरातल पर स्थिति लगभग जस की तस है। केवल पर्यावास भवन के पास मामूली सुधार हुआ है, जबकि अन्य स्थानों पर पुराने खतरे आज भी बने हुए हैं। हजारों वाहन चालक रोज अपनी जान जोखिम में डालकर इन रास्तों से गुजर रहे हैं।*

सड़क हादसे संयोग नहीं होते, बल्कि उनकी कुछ निश्चित जगहें होती हैं, जिन्हें ब्लैक स्पॉट कहा जाता है। 1250 चौराहा, अटल पथ, तरुण पुष्कर तिराहा और भेल मार्ग ऐसे ही स्थान हैं। समिति ने रोड मार्किंग सुधारने, रोटरी का पुन: डिज़ाइन तैयार करने, लेफ्ट टर्न व्यवस्थित करने और आवश्यक साइनेज लगाने के निर्देश दिए थे, लेकिन अधिकांश निर्देशों का पालन अब तक नहीं हुआ। फाइलों में कार्रवाई जरूर चल रही है, पर सड़क पर बदलाव दिखाई नहीं देता। इससे स्पष्ट है कि आम नागरिक की सुरक्षा प्रशासन की प्राथमिकताओं में शामिल नहीं है।

समय-सीमा तय होने के बाद भी किसी की जवाबदेही निर्धारित नहीं की गई। छह माह की अवधि बीत गई, एक वर्ष पूरा हो गया, लेकिन जिम्मेदार विभाग एक-दूसरे पर जिम्मेदारी डालकर पल्ला झाड़ रहे हैं। नगर निगम, लोक निर्माण विभाग और यातायात पुलिस कभी धन की कमी, कभी समन्वय और कभी टेंडर प्रक्रिया में देरी का हवाला देते हैं। सवाल यह है कि जब सुप्रीम कोर्ट की समिति निर्देश देती है, तब इन बाधाओं को दूर करने की जिम्मेदारी किसकी है? क्या किसी बड़े हादसे का इंतजार किया जा रहा है?

इस लापरवाही का सबसे अधिक खामियाजा दोपहिया वाहन चालक भुगत रहे हैं। कई ब्लैक स्पॉट पर न डिवाइडर व्यवस्थित हैं, न जेब्रा क्रॉसिंग और न ही पर्याप्त संकेतक। तरुण पुष्कर तिराहे पर लेफ्ट टर्न की समस्या आज भी बनी हुई है। 1250 चौराहे की विशाल रोटरी और भेल क्षेत्र की जर्जर सड़कें दुर्घटनाओं को आमंत्रित कर रही हैं। स्कूल-कॉलेज के विद्यार्थी और हजारों कर्मचारी प्रतिदिन इन मार्गों से गुजरते हैं।

समिति ने केवल आधारभूत ढांचे में सुधार ही नहीं, बल्कि हेलमेट और सीट बेल्ट की अनिवार्यता, शराब पीकर वाहन चलाने वालों पर सख्ती तथा औद्योगिक संस्थानों द्वारा बस सुविधा शुरू करने जैसे सुझाव भी दिए थे, ताकि सड़कों पर वाहनों का दबाव कम हो। दुर्भाग्य से इन सुझावों पर भी गंभीरता से अमल नहीं हुआ। ट्रैफिक पुलिस चालान काटने में सक्रिय है, लेकिन सड़क सुरक्षा सुनिश्चित करने में अपेक्षित पहल नहीं दिखती।

अब समय आ गया है कि इस मामले में कठोर कार्रवाई हो। निर्धारित समय में काम पूरा न करने वाले अधिकारियों की जवाबदेही तय की जाए, सभी ब्लैक स्पॉट का पुन: ऑडिट कर शीघ्र सुधार कार्य शुरू किया जाए और नगर निगम, लोक निर्माण विभाग तथा पुलिस की संयुक्त टास्क फोर्स बनाकर नियमित प्रगति सार्वजनिक की जाए। सड़क सुरक्षा कोई सरकारी फाइल का विषय नहीं, बल्कि जीवन और मृत्यु का प्रश्न है। सुप्रीम कोर्ट अपना दायित्व निभा चुका है, अब प्रशासन को यह साबित करना होगा कि उसके लिए नागरिकों का जीवन वास्तव में सर्वोच्च प्राथमिकता है।

आजकल

नियम भी बचें, रोजगार भी

भोपाल में आवासीय क्षेत्रों में संचालित व्यावसायिक प्रतिष्ठानों पर सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बाद शुरू हुई कार्रवाई अब केवल प्रशासनिक विषय नहीं रह गई है। यह कानून, रोजगार और जनहित के बीच संतुलन का प्रश्न बन चुका है। 1250 से अधिक प्रतिष्ठानों को नोटिस जारी होने और कई स्थानों पर सीलिंग की कार्रवाई से हजारों व्यापारियों, कर्मचारियों और उनके परिवारों के सामने आजीविका का संकट खड़ा हो गया है।

नि:संदेह, सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का पालन हर सरकार और नागरिक का दायित्व है। बिना अनुमति आवासीय क्षेत्रों में व्यवसाय चलने से यातायात, अग्नि सुरक्षा, पार्किंग और बुनियादी सुविधाओं पर दबाव बढ़ता है। इसलिए नियमों का पालन आवश्यक है। लेकिन यह भी सच है कि ये प्रतिष्ठान रातोंरात खड़े नहीं हुए। वर्षों तक बिजली, पानी, कर और अन्य सरकारी प्रक्रियाओं से गुजरते हुए इनका संचालन होता रहा। ऐसे में अचानक कार्रवाई का सबसे बड़ा असर छोटे व्यापारियों और कर्मचारियों पर पड़ रहा है।

यहीं सरकार की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण हो जाती है। प्रशासन न्यायालय के आदेश की अनदेखी नहीं कर सकता, लेकिन सरकार पुनर्वास और व्यावहारिक समाधान का रास्ता जरूर तलाश सकती है। प्रभावित व्यापारियों को वैकल्पिक स्थान, पर्याप्त समय और स्पष्ट नीति उपलब्ध कराना आवश्यक है। जो प्रतिष्ठान सुरक्षा और भवन संबंधी मानकों का पालन कर सकते हैं, उन्हें निर्धारित शर्तों के साथ राहत देने पर भी विचार किया जा सकता है।

यह केवल भोपाल का मुद्दा नहीं, बल्कि तेजी से बढ़ते शहरों की साझा चुनौती है। कानून का उद्देश्य व्यवस्था कायम करना है, आजीविका छीनना नहीं। इसलिए आवश्यक है कि न्यायालय के निर्देशों का सम्मान करते हुए सरकार, प्रशासन और व्यापारी मिलकर ऐसा समाधान निकालें, जिससे न नियमों से समझौता हो और न हजारों परिवारों की रोजी-रोटी पर संकट आए। यही संतुलित और दूरदर्शी शासन की पहचान होगी।

760 करोड़ का नर्सिंग घोटाला: व्यवस्था की विफलता, छात्रों का संकट

मध्यप्रदेश का नर्सिंग कॉलेज घोटाला केवल एक वित्तीय अनियमितता नहीं, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य और प्रशासनिक जवाबदेही पर गंभीर सवाल खड़े करने वाला मामला है। पिछले चार वर्षों में इस घोटाले के कारण सरकार पर लगभग 760 करोड़ रुपये का अतिरिक्त वित्तीय बोझ पड़ा है। यह राशि इतनी बड़ी है कि इससे कई नए अस्पताल बनाए जा सकते थे, ग्रामीण स्वास्थ्य केंद्रों को आधुनिक सुविधाएं मिल सकती थीं और नर्सिंग स्टाफ की कमी दूर करने की दिशा में ठोस कदम उठाए जा सकते थे। दुर्भाग्य से यह धन उस व्यवस्था की खामियों की कीमत बन गया, जिसने समय रहते अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाई।

विवाद की शुरुआत तब हुई, जब नर्सिंग काउंसिल और स्वास्थ्य विभाग की जांच में कई निजी नर्सिंग कॉलेजों में गंभीर अनियमितताएं सामने आईं। अधिकांश संस्थानों में न पर्याप्त आधारभूत ढांचा था, न योग्य शिक्षक और न ही छात्रों के लिए आवश्यक क्लिनिकल सुविधाएं। कुछ मामलों में निरीक्षण के दौरान बिस्तर और मरीज तक किराए पर लाकर व्यवस्था का दिखावा किया गया। कागजों पर सब कुछ व्यवस्थित था, लेकिन वास्तविकता बिल्कुल अलग थी। इसके बाद सरकार ने कई कॉलेजों की मान्यता रद्द कर दी और यहीं से संकट और खर्च दोनों बढ़ते चले गए।

मान्यता समाप्त होने के बाद हजारों छात्र असमंजस में आ गए। उनका भविष्य अधर में लटक गया और मामला न्यायालय तक पहुंचा। छात्रों के हितों को ध्यान में रखते हुए अदालत ने सरकार को निर्देश दिया कि उन्हें दूसरे मान्यता प्राप्त कॉलेजों में समायोजित किया जाए, ताकि उनकी पढ़ाई प्रभावित न हो। सरकार ने इस प्रक्रिया में अन्य कॉलेजों को भुगतान किया। इसके साथ ही कानूनी कार्यवाही, प्रशासनिक खर्च और अन्य वित्तीय दायित्वों को मिलाकर खर्च का आंकड़ा लगभग 760 करोड़ रुपये तक पहुंच गया।

सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि आखिर इसकी जिम्मेदारी किसकी है? यदि शुरुआत में ही मान्यता देने की प्रक्रिया पारदर्शी और सख्त होती, तो न छात्रों का भविष्य संकट में पड़ता और न ही सरकारी खजाने पर इतना बड़ा बोझ आता। पहले बिना पर्याप्त जांच के अनुमति देना और बाद में उसी गलती को सुधारने के लिए जनता का पैसा खर्च करना प्रशासनिक लापरवाही का स्पष्ट उदाहरण है।

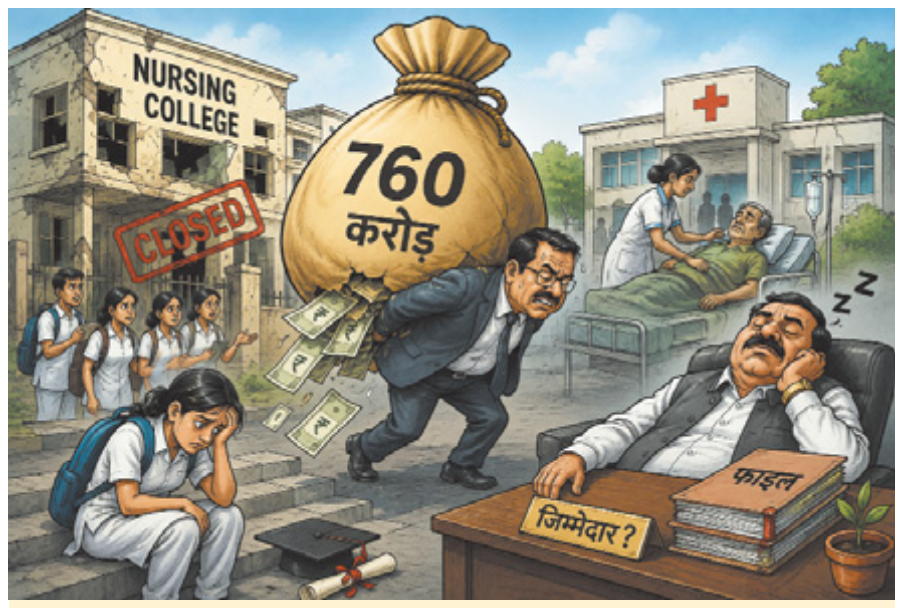

विवाद की शुरुआत तब हुई, जब नर्सिंग काउंसिल और स्वास्थ्य विभाग की जांच में कई निजी नर्सिंग कॉलेजों में गंभीर अनियमितताएं सामने आईं। अधिकांश संस्थानों में न पर्याप्त आधारभूत ढांचा था, न योग्य शिक्षक और न ही छात्रों के लिए आवश्यक क्लिनिकल सुविधाएं। कुछ मामलों में निरीक्षण के दौरान बिस्तर और मरीज तक किराए पर लाकर व्यवस्था का दिखावा किया गया। कागजों पर सब कुछ व्यवस्थित था, लेकिन वास्तविकता बिल्कुल अलग थी। इसके बाद सरकार ने कई कॉलेजों की मान्यता रद्द कर दी और यहीं से संकट और खर्च दोनों बढ़ते चले गए।

इस पूरे घटनाक्रम का सबसे अधिक नुकसान छात्रों ने उठाया। उन्होंने लाखों रुपये फीस के रूप में जमा किए, लेकिन उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और सुरक्षित भविष्य नहीं मिल सका। कई छात्रों को बीच सत्र में कॉलेज बदलने पड़े, जबकि कुछ ने पढ़ाई ही छोड़ दी। जिन छात्रों का दूसरे संस्थानों में समायोजन हुआ, उन्हें भी नई व्यवस्था में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

यह मामला केवल शिक्षा तक सीमित नहीं है। इसका सीधा प्रभाव स्वास्थ्य सेवाओं पर भी पड़ता है। नर्सिंग ऐसा क्षेत्र है, जहां प्रशिक्षित और दक्ष मानव संसाधन की लगातार आवश्यकता रहती है। यदि प्रशिक्षण देने वाले संस्थानों की गुणवत्ता ही संदिग्ध होगी, तो स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता पर भी उसका असर दिखाई देगा। ग्रामीण और शहरी अस्पताल पहले से ही नर्सों की कमी से जूझ रहे हैं। ऐसे में कमजोर प्रशिक्षण व्यवस्था भविष्य की स्वास्थ्य प्रणाली के लिए गंभीर चुनौती बन सकती है।

सरकार ने अब जांच प्रक्रिया को अधिक सख्त बनाने और दोषी अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई का भरोसा दिया है। यह स्वागतयोग्य कदम है, लेकिन इससे भी अधिक जरूरी यह सुनिश्चित करना है कि ऐसी स्थिति दोबारा पैदा ही न हो। नियम केवल कागजों तक सीमित न रहें, बल्कि उनका ईमानदारी से पालन भी हो। इस पूरे प्रकरण ने शिक्षा के बढ़ते व्यावसायीकरण पर भी सवाल खड़े किए हैं। जब शिक्षा को केवल कमाई का माध्यम बना दिया जाता है, तब गुणवत्ता और नैतिकता सबसे पहले प्रभावित होती हैं। नर्सिंग जैसे संवेदनशील क्षेत्र में यह और भी खतरनाक है, क्योंकि यहां प्रशिक्षित होने वाले विद्यार्थी आगे चलकर सीधे मरीजों के जीवन से जुड़े होते हैं। प्रशिक्षण में की गई छोटी-सी लापरवाही भी भविष्य में गंभीर परिणाम ला सकती है।

अब आवश्यकता है कि पूरे मामले की निष्पक्ष और उच्च स्तरीय जांच कर यह तय किया जाए कि नियमों की अनदेखी किस स्तर पर हुई और दोषी कौन हैं। जिम्मेदार अधिकारियों और संस्थानों के खिलाफ केवल विभागीय कार्रवाई नहीं, बल्कि कानूनी कार्रवाई भी होनी चाहिए। साथ ही प्रभावित छात्रों को राहत देने के लिए उनकी फीस, शैक्षणिक नुकसान और भविष्य की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए विशेष योजना बनाई जानी चाहिए।760 करोड़ रुपये का यह खर्च केवल सरकारी खाते का आंकड़ा नहीं है। यह उन संसाधनों की कीमत है, जो जनता के स्वास्थ्य और शिक्षा पर खर्च होने चाहिए थे। यह प्रकरण बताता है कि जब व्यवस्था समय पर अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाती, तो उसकी कीमत अंतत: जनता को चुकानी पड़ती है। मध्यप्रदेश का यह अनुभव पूरे देश के लिए एक चेतावनी है कि स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे संवेदनशील क्षेत्रों में पारदर्शिता, जवाबदेही और गुणवत्ता से कोई समझौता नहीं किया जा सकता। यदि समय रहते कठोर सुधार नहीं किए गए, तो ऐसे घोटालों की कीमत केवल सरकारी खजाना ही नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियां भी चुकाएंगी।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

2029 का रिमोट जेन जी के हाथ में, युवा मतदाता बदल देंगे राजनीति की परिभाषा

2029 का लोकसभा चुनाव भारत के लोकतंत्र के इतिहास में एक नए अध्याय की शुरुआत करेगा। यह चुनाव केवल सत्ता परिवर्तन का नहीं होगा, बल्कि उस पीढ़ी के उदय का प्रमाण भी होगा, जिसने तकनीक के साथ आंखें खोलीं और सवालों के साथ बड़ी हुई। इस चुनाव में हर चौथा मतदाता जेन जी का होगा। यानी 18 से 32 वर्ष आयु वर्ग के लगभग 38 करोड़ युवा जब मतदान करेंगे, तो उनकी उंगली पर केवल एक वोट नहीं, बल्कि देश की दिशा तय करने की ताकत होगी। इसलिए राजनीति के पुराने फॉर्मूले बदलने वाले हैं और जो दल इस बदलाव को समय रहते नहीं समझेगा, वह पीछे छूट जाएगा।

जेन जी कोई साधारण मतदाता वर्ग नहीं है। यह पहली ऐसी पीढ़ी है, जिसने बचपन से ही इंटरनेट, मोबाइल और सोशल मीडिया को जीवन का हिस्सा बनाया है। इस पीढ़ी ने अखबार की सुर्खियों से पहले यूट्यूब की शॉर्ट वीडियो देखी है, नेता के भाषण से पहले गूगल पर उसके पुराने बयान खोजे हैं और पोस्टर-बैनर से पहले इंस्टाग्राम की रील और मीम के जरिए किसी पार्टी की छवि बनाई है। इसलिए इनके लिए राजनीति अब मंच की नहीं, बल्कि स्क्रीन की बात है। सुबह उठते ही फोन खोलना और रात को सोने से पहले आखिरी बार नोटिफिकेशन देखना उनकी दिनचर्या का हिस्सा है। ऐसे में जो राजनीतिक दल डिजिटल स्पेस में प्रभावी नहीं होगा, वह इस पीढ़ी की सोच से बाहर हो जाएगा।

इस पीढ़ी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह सवाल करती है और तुरंत जवाब चाहती है। पहले मतदाता नेता के एक भाषण से प्रभावित हो जाते थे, लेकिन जेन जी के लिए केवल भाषण पर्याप्त नहीं है। यह पीढ़ी हर दावे को तथ्यों की कसौटी पर परखती है। यह वादों से अधिक काम और घोषणाओं से अधिक परिणाम देखती है। इसलिए 2029 में वही दल सफल होगा, जो केवल नारे नहीं, बल्कि ठोस तथ्य और व्यावहारिक समाधान लेकर आएगा।

जेन जी के मुद्दे भी स्पष्ट हैं। सबसे बड़ा मुद्दा रोजगार है। यह पीढ़ी बेरोजगारी को गंभीर समस्या मानती है, लेकिन उसे केवल सरकारी नौकरी का वादा नहीं चाहिए। वह कौशल विकास, स्टार्टअप के लिए वित्तीय सहयोग, फ्रीलांसिंग के अवसर और वैश्विक रोजगार बाजार में प्रतिस्पर्धा करने योग्य प्रशिक्षण चाहती है। दूसरा मुद्दा शिक्षा है, लेकिन रटने वाली नहीं, बल्कि तकनीक और नवाचार से जुड़ी शिक्षा। तीसरा मुद्दा महंगाई है, क्योंकि यह पीढ़ी अपनी पहली आय से आत्मनिर्भर बनने का सपना देखती है। चौथा मुद्दा डिजिटल सुरक्षा है। साइबर ठगी, डेटा चोरी और ऑनलाइन उत्पीड़न इनके लिए वास्तविक चिंताएं हैं। इसलिए वे इस क्षेत्र में सख्त कानून और त्वरित कार्रवाई चाहते हैं।

जलवायु परिवर्तन, मानसिक स्वास्थ्य और शहरों की बढ़ती भीड़ भी इस पीढ़ी के प्रमुख मुद्दे हैं। जेन जी पर्यावरण के प्रति संवेदनशील है, क्योंकि उसने बचपन से ही बढ़ती गर्मी, बाढ़ और प्रदूषण के प्रभाव देखे हैं। यह पीढ़ी मानसिक स्वास्थ्य पर खुलकर बात करती है और चाहती है कि स्कूलों, कॉलेजों तथा कार्यस्थलों पर परामर्श सुविधाएं उपलब्ध हों। स्पष्ट है कि इसका एजेंडा व्यापक है और केवल एक-दो मुद्दों तक सीमित नहीं है। 2029 के चुनाव में राजनीतिक दलों की रणनीति भी बदलनी होगी। अब रैलियों की भीड़ से अधिक यूट्यूब के व्यूज मायने रखेंगे। पोस्टरों से अधिक एक वायरल मीम असर करेगा और नुक्कड़ सभा से अधिक किसी पॉडकास्ट में की गई ईमानदार बातचीत प्रभाव डालेगी। सभी दल अपने आईटी सेल मजबूत कर रहे हैं, यूट्यूब चैनल चला रहे हैं और सोशल मीडिया इन्फ्लुएंसर्स के साथ जुड़ रहे हैं, क्योंकि उन्हें पता है कि जेन जी तक पहुंचने का सबसे प्रभावी माध्यम अब डिजिटल प्लेटफॉर्म ही है।

लेकिन केवल डिजिटल मौजूदगी पर्याप्त नहीं होगी। जेन जी बनावटीपन को तुरंत पहचान लेती है। यदि कोई नेता सोशल मीडिया पर युवाओं जैसा दिखने की कोशिश करे, लेकिन जमीन पर उनकी समस्याएं न सुने, तो यह पीढ़ी उसे स्वीकार नहीं करेगी। इसलिए राजनीतिक दलों को अपने घोषणा-पत्र में युवाओं के लिए ठोस योजनाएं शामिल करनी होंगी, उम्मीदवारों के चयन में उन्हें अवसर देना होगा और चुनाव जीतने के बाद भी लगातार संवाद बनाए रखना होगा। 2029 में महिला मतदाताओं की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण होगी। जेन जी की युवतियां पहले से अधिक जागरूक और आत्मनिर्भर हैं। वे शिक्षा, करियर और सुरक्षा को लेकर स्पष्ट सोच रखती हैं। इसलिए महिला सुरक्षा, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और कार्यस्थल पर समान अवसर जैसे मुद्दे चुनावी विमर्श के केंद्र में रहेंगे। राजनीतिक दलों को महिलाओं को केवल योजनाओं की लाभार्थी नहीं, बल्कि नीति निर्माण की भागीदार मानना होगा।

इस बदलाव के साथ चुनौतियां भी होंगी। सबसे बड़ी चुनौती फेक न्यूज और भ्रामक सूचनाओं की होगी। जेन जी जानकारी के लिए सोशल मीडिया पर निर्भर है, जहां सच और झूठ के बीच अंतर करना हमेशा आसान नहीं होता। इसलिए राजनीतिक दलों और चुनाव आयोग, दोनों की जिम्मेदारी होगी कि प्रचार तथ्यों पर आधारित हो और अफवाहों पर प्रभावी रोक लगे। दूसरी चुनौती धैर्य की होगी। यह पीढ़ी त्वरित परिणाम चाहती है, जबकि नीतियों और विकास के प्रभाव सामने आने में समय लगता है।

एक महत्वपूर्ण बदलाव यह भी है कि जेन जी जाति और क्षेत्र की पारंपरिक राजनीति से आगे बढ़कर सोचती है। यदि किसी छोटे शहर का युवा और महानगर की युवती एक जैसी समस्या का सामना कर रहे हैं, तो वे समान मुद्दों पर एक साथ खड़े हो सकते हैं। इसलिए 2029 में मुद्दा आधारित राजनीति के मजबूत होने और पहचान आधारित राजनीति के अपेक्षाकृत कमजोर पड़ने की संभावना है। आंकड़े बताते हैं कि 2029 तक भारत की लगभग 65 प्रतिशत आबादी 35 वर्ष से कम आयु की होगी और उसका बड़ा हिस्सा मतदान प्रक्रिया में सक्रिय रहेगा। इसका अर्थ है कि राजनीतिक दल अब केवल पारंपरिक वोट बैंक के भरोसे नहीं रह सकते। उन्हें युवाओं का विश्वास अपने काम और विश्वसनीयता के आधार पर जीतना होगा। भविष्य की सरकारों की प्राथमिकताओं में शिक्षा, स्वास्थ्य, तकनीक, नवाचार, स्टार्टअप, गिग इकोनॉमी और पारदर्शी शासन को अधिक महत्व देना पड़ेगा। 2029 का चुनाव केवल राजनीतिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि भारत की युवा शक्ति का उद्घोष होगा। यह तय करेगा कि सत्ता का रिमोट अब किसके हाथ में है। जो दल जेन जी की भाषा, अपेक्षाओं और सोच को समझेगा, वही भविष्य की राजनीति का नेतृत्व करेगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

हर चौराहे पर भीख मांगते लोग, यातायात प्रभावित, दुर्घटनाएं बढ़ीं लेकिन जिम्मेदारी किसी की नहीं

भिखारी मुक्त शहर का दावा अधूरा

राजधानी भोपाल को भिखारी मुक्त शहर घोषित करने की घोषणा को काफी समय बीत चुका है। नगर निगम, जिला प्रशासन और समाज कल्याण विभाग ने संयुक्त अभियान चलाकर यह दावा भी किया था कि अब शहर के चौराहों, बाजारों और सार्वजनिक स्थानों से भीख मांगने वालों को हटाकर उन्हें पुनर्वास केंद्रों में भेजा जाएगा। सरकारी फाइलों में अभियान सफल दिखाया गया, आंकड़े प्रस्तुत किए गए और तस्वीरें जारी की गईं। लेकिन अगर कोई आम नागरिक रोजाना सड़क पर निकलता है तो उसे वह सच्चाई दिखाई देती है, जिसे कागजों में छिपाने की कोशिश की जा रही है।

आज भी शहर के हर बड़े चौराहे पर भीख मांगते लोग दिखाई देते हैं। एमपी नगर, बोर्ड ऑफिस चौराहा, 6 नंबर चौराहा, आईएसबीटी, भदभदा चौराहा और मंत्रालय के पास वाला चौराहा ऐसे स्थान हैं, जहां सुबह से रात तक भीख मांगने वाले अपने निर्धारित स्थान पर मौजूद रहते हैं। इनमें बच्चे, महिलाएं, बुजुर्ग और कई बार दिव्यांग लोग भी शामिल होते हैं। सबसे हैरानी की बात यह है कि इन चौराहों पर यातायात पुलिस भी तैनात रहती है, लेकिन भीख मांगने वालों को हटाने की कोई कार्रवाई नहीं होती। नतीजा यह होता है कि लाल बत्ती होते ही ये लोग गाड़ियों के बीच घुस जाते हैं, शीशे खटखटाते हैं और ट्रैफिक रोककर भीख मांगते हैं। इससे न केवल जाम लगता है, बल्कि कई बार दुर्घटनाएं भी हो जाती हैं।

पिछले कुछ महीनों में ऐसे कई मामले सामने आए हैं, जहां गाड़ी रोककर भीख मांगते समय पीछे से आने वाले वाहन से टक्कर हो गई। कुछ मामलों में दोपहिया चालक गिरकर घायल हुए और कुछ में पैदल चलने वाले लोगों को चोट आई। लेकिन इसके बावजूद प्रशासन की नींद नहीं टूटी। अभियान के नाम पर कभी-कभार एक-दो लोगों को पकड़कर छोड़ दिया जाता है और फिर सब कुछ पहले जैसा हो जाता है। सवाल यह है कि जब शहर को भिखारी मुक्त घोषित किया जा चुका है तो फिर हर चौराहे पर यह भीड़ क्यों है? और अगर ये लोग अभी भी मौजूद हैं तो पुनर्वास केंद्र कहां हैं और वहां कितने लोगों को वास्तव में रोजगार दिया गया है?

समस्या केवल भीख मांगने की नहीं है। समस्या उस सोच की है, जिसके तहत किसी मुद्दे को केवल घोषणा और प्रेस नोट तक सीमित कर दिया जाता है। भिखारी मुक्त अभियान के पीछे मंशा बुरी नहीं थी। उद्देश्य था कि मजबूर लोगों को भीख के चक्र से निकालकर उन्हें कौशल प्रशिक्षण देकर आत्मनिर्भर बनाया जाए। लेकिन धरातल पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। समाज कल्याण विभाग के पास न तो पर्याप्त स्टाफ है और न ही पुनर्वास केंद्रों के लिए कोई ठोस योजना है। अधिकांश केंद्र या तो बंद पड़े हैं या वहां सुविधाओं के नाम पर केवल खानापूर्ति होती है। ऐसे में भीख मांगने वाला व्यक्ति जब पकड़ा जाता है और उसे पता चलता है कि दो दिन बाद फिर उसी चौराहे पर खड़ा होना है, तो वह अभियान का इंतजार करने के बजाय फिर से भीख मांगना शुरू कर देता है।

समन्वय का अभाव भी इस समस्या की बड़ी वजह है। नगर निगम कहता है कि यह जिला प्रशासन का काम है। जिला प्रशासन कहता है कि समाज कल्याण विभाग देखेगा और समाज कल्याण विभाग कहता है कि पुलिस सहयोग नहीं करती। पुलिस का कहना है कि उनके पास पहले से ही कानून-व्यवस्था की जिम्मेदारी है। ऐसे में गेंद एक विभाग से दूसरे विभाग के पाले में जाती रहती है और बीच में आम जनता तथा भीख मांगने वाले दोनों पिसते रहते हैं।

भीख मांगने वालों में एक बड़ा हिस्सा ऐसा भी है, जो पेशेवर गिरोहों द्वारा संचालित है। शहर के बाहरी इलाकों से बच्चों और महिलाओं को लाकर चौराहों पर खड़ा कर दिया जाता है। दिनभर की कमाई शाम को गिरोह के सरगना ले जाते हैं। इन गिरोहों पर कभी कोई बड़ी कार्रवाई नहीं होती, क्योंकि इनके तार अक्सर स्थानीय स्तर पर जुड़े होते हैं। जब तक इन गिरोहों की कमर नहीं तोड़ी जाएगी, तब तक चौराहे खाली नहीं होंगे।

इसका असर शहर की छवि पर भी पड़ रहा है। भोपाल स्मार्ट सिटी की दौड़ में शामिल है। यहां हर साल हजारों पर्यटक और मेहमान आते हैं, लेकिन जब वे चौराहे पर गाड़ी रोकते ही शीशे पर दस्तक सुनते हैं तो शहर के विकास के दावों पर सवाल उठता है। एक तरफ हम डिजिटल इंडिया और स्वच्छ भारत की बात करते हैं और दूसरी तरफ हमारी सड़कों पर बुनियादी सुरक्षा और अनुशासन नहीं है।

सबसे पहले ईमानदारी से सर्वे होना चाहिए कि शहर में कितने लोग भीख मांगते हैं, उनमें से कितने मजबूर हैं और कितने पेशेवर। फिर मजबूर लोगों के लिए कौशल विकास प्रशिक्षण और रोजगार की गारंटी के साथ पुनर्वास केंद्र चलाए जाएं तथा पेशेवर गिरोहों पर कड़ी कार्रवाई हो। इसके लिए एक नोडल एजेंसी बनाई जानी चाहिए, जिसमें नगर निगम, पुलिस और समाज कल्याण विभाग के अधिकारी शामिल हों और हर महीने इसकी समीक्षा हो।

साथ ही जनता को भी जागरूक करना होगा। जब तक हम चौराहों पर दया के नाम पर पैसे देंगे, तब तक यह धंधा चलता रहेगा। भीख देने से समस्या हल नहीं होती, बल्कि बढ़ती है। इसलिए जरूरी है कि लोग दान करें तो किसी संस्था को करें, न कि चौराहे पर खड़े व्यक्ति को।

भिखारी मुक्त शहर का दावा अभी अधूरा है। कागज पर हरे निशान लगाने से हकीकत नहीं बदलती। जब तक हर चौराहे पर भीख मांगते लोग दिखेंगे, तब तक यही समझा जाएगा कि योजना विफल हो गई है। प्रशासन को यह समझना होगा कि शहर की सुंदरता केवल सड़कों और इमारतों से नहीं, बल्कि उस व्यवस्था से बनती है, जहां हर नागरिक सुरक्षित महसूस करे और कोई भी इंसान मजबूरी में हाथ फैलाने को विवश न हो।

अगर अभी भी समय रहते कदम नहीं उठाए गए तो यह अभियान भी पिछली कई योजनाओं की तरह फाइलों में दफन हो जाएगा और राजधानी के चौराहे फिर से उसी अव्यवस्था और असुरक्षा के गवाह बनते रहेंगे। इसलिए अब जरूरत घोषणाओं की नहीं, बल्कि जमीनी कार्रवाई की है, क्योंकि शहर तभी वास्तव में भिखारी मुक्त कहलाएगा, जब अंतिम व्यक्ति को भी सम्मान के साथ जीने का अवसर मिलेगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)